ज़िन्दगी का सिस्टम

लेखक : आयतुल्लाहिल उज़्मा सैय्यिदुल उलमा सै0 अली नक़ी नक़वी ताबा सराह
सम्पादक : नूरे हिदायत फाउण्डेशन

क़िस्त 9

कोई मुसलमान अगर मज़हबी विश्वास से जुड़े शक और एतराज़ों को सामने लाता है तो सिर्फ़ इतने पर उसे काफ़िर नहीं समझ लेना चाहिये।

इन्सान के दिमाग़ को जब शोध का चस्का लग जाता है, और वह हर बात की दलील जानना और समझना चाहता है, फिर इन्सान की कल्पना शक्ति अकसर संदेह और शक को सामने लाती रहती है जिस में इन्सान का कोई बस नहीं होता अगर इस शक व शुबहे के पैदा होने के बाद शोध (Research) में कमी हुई और इस शक ने अक़ीदे विश्वास का रूपधार कर लिया तो वह कुफ़्र होगा जिस में हमेशा मरन है।

ज़रूरत है कि शक व शुबहे और एतराज़ जो दिमाग़ में घूमें उन्हें सामने लाया जाये और उस को दूर करने की कोशिश की जाये।

लेकिन अगर 'नास्तिकतावाद' इस हद पर रहा कि एतराज़ और शुबहे के कहने ही पर 'काफ़िर' (नास्तिक) की उपाधि मिल गयी तो किसी को हिम्मत ही काहे को हो गी कि वह अपने ख़्यालों को सामने ला कर संतोष पासके। नतीजा यह होगा कि वह ख़्यालात दिमाग़ में घूमते रहेंगे और एक वक़्त में विश्वास का रूप ले लेंगे। अब वह वाक़ई काफ़िर होगा, मगर उसकी ज़िम्मेदारी हो गी हमारे इस ग़लत तरीक़े पर।

पिछले काल दौर में अंग्रेज़ी शिक्षा के साथ जो बहुत से 'काफ़िर' पैदा हुए उसकी ज़िम्मेदारी बहुत ज़्यादा हमारे इस ग़लत तरीक़े पर है।

हम ने पहले ही यह समझ लिया कि अंग्रेज़ी शिक्षा काफ़िर ढालने की मशीन है। अब अगर किसी अंग्रेंज़ी जानने वाले या जिज्ञासू ने कुछ भी शक वाले ख़्याल सामने किये तो हम ने छूटते ही उसे काफ़िर कह दिया।

नतीजा यह हुआ कि वह अब तक तो काफ़िर न था मगर हमारे इस कहने से हो गया। अगर उस ने हम से ख़यालों की लेन देन चाहा तो चूँकि हम समझते थे कि एक 'काफ़िर' हम से बात करना चाहता है, इस लिये या तो हम ने इस का मौक़ा ही न दिया या मौक़ा दिया भी तो विवाद (Debate) वाले जवाब दे कर उसे चुप करने की ज़यादा कोशिश की । हॉलाकि ऐसे जवाबों से विरोधी चुप तो हो जाता है मगर सत्य के एक खोजी के दिल की चुभन दूर नहीं होती। लेकिन हम तो यह समझकर बात करते थे कि यह आदमी सत्य का खोजी नहीं है, काफ़िर है जो हम को सिर्फ़ दिखाने के लिये हम से चाहे न चाहे बहस करना चाहता है।

नतीजा यह हुआ कि पढ़े लिखे वर्ग और धर्म विद्वानों के बीच की खाई बढ़ती गई। इन्हों ने उन के पास आना जाना छोड़ा उन्हों ने इनकी तरफ़ से मुंह मोड़ा।

शुक्र है कि इस हालत में अब बहुत हद तक सुधार हो गया है।

अक्सर अंग्रेज़ी कालिज और स्कूलों के छात्र मज़हबी मसलों का शोध करते हैं और संतोष पाते हैं। धर्म विद्वान के वाज़ में इस वर्ग के बहुत से लोग आते हैं और फ़ाएदा उठाते हैं। तरीक़े में बढ़ावा होना चाहिये और कभी ऐसा नहीं होना चाहिये कि किसी बड़े से बड़े एतराज़ के सामने लाने पर किसी को काफ़िर समझ लिया जाए जब तक वह वाक़ई अपने कुफ़्र (नास्तिकता) के विश्वास का खुला हुआ मानने वाला और ध्वज धारी न हो।

नासेबी

(अहलेबैत (अ०) से खुल्लम खल्ला दुश्मनी करने वाला)

इस में कोई शक नहीं कि वह लोग जो रसूल मुहम्मद (स०) के एहलेबैत (अ०) (घर वाले) से खुल्लम खुल्ला दुश्मनी ज़ाहिर करें वे काफ़िर हैं और नजिस ।

ये कोई आज का मसला या वक़्त के बदलने से पैदा होने वाला कोई नया हुक्म नहीं है बल्कि हमेशा से धर्म शास्त्रियों/फक़ीहों/मुज्तहिदों का मसला है और हमारे मासूमीन (अ०) के बयानों में यह बात आई है, बल्कि इस हुक्म की दलील में अहले सुन्नत की भरोसे वाली रवायतों (बयान) में भी इसके प्रमाण मिलते हैं।

पैग़म्बर (स०) की हदीस " *या अली हुब्बुक ईमानुन व बुग्ज़ुका कुफ़्न* व निफ़ाक"

तर्जुमा - (या अली तुम से मुहब्बत ईमान है और दूश्मनी कुफ़्र। और निफ़ाक (जबान से मानना पर मन से नहीं) दूसरे फ़िरक़े के यहां ये हदीस मौजूद है ।

शीया उलमा के बयानों को देखना हो तो नीचे दी जा रही किताबों को देख सकते हैं :-

तज़्कि-र-तुल फ़ु-क़्हा अल्लामा हिल्ली भाग 1पेज 8पेज जामीउल मक़ासिद-मुहक़्क़िके सानी भाग 1पेज 16, रौज़ुल जिनान फ़ी शर्हिल अज़हान-शहीद सानी पेज 163, फ़िक़्हुल मआलिम शहीद सानी पजे 249, कश्फ़ुल्लसाम-फ़ाज़िल हिन्दी भाग 1, रियाज़ुल शैख हसन बिन ज़ैदुद्दीन मसायल-सैयद अली तबातबाई भाग 1, मुस्तनदुशशाया शैख़ अहमद निराक़ी भाग1 पेज 35, वसायलुशीया फ़ी अहकामिश्शरीआ सैयद मोसिन आरजी पेज 148, मिफ़्ताहुल करामह सैयद मो० जवाद अल आमिली भाग 1 पेज 144, कश्फ़ुल ग़िता-शैख़ जाफ़र नजफ़ी पेज 123, जवाहरुल कलाम शैख़ मो० हसन नजफ़ी भाग 1 पेज 451, नजातुल इबाद शैख़ मो० हसन नजफ़ी पेज 50, अलवजीज़ुर रायक़ सैयदुल उलमा सैयद हुसैन पेज 20, रौज़तुल अहकाम-सैयदुल उलमा भाग1 पेज 17, किताबुत्तहारह-शैख़ मर्तज़ा अंसारी भग 2 खण्ड 2 पेज 219, हिदायतुल अनाम-शैख़ मो० हुसैन काज़िमी भाग 2 पेज 426, मुर्शिदुल मोमिनीन मुम्ताज़ुल उलमा सैयद मुहम्मद तक़ी पेज 5, ज़रीअतुल वदाद फ़ी मुन्तखबिब नजाति इबाद- मीरज़ा मुहम्मद हुसैन पेज 35, फ़लकुन नजात सैयद महदी क़ज़वीनी पेज 21, मिनहुजुरिशाद शैख़ जाफ़र पेज 142, नेमुज़्ज़ाद-शैख़ मुहम्मद ताहा पेज 37, ज़ख़ीरतुल इबाद-मिरज़ा मुहम्मद तक़ी शीराज़ी पेज 19, सफ़ीनतुन्नजात- शैख़ अहमद आले काशिफ़ुल ग़िता भाग 1 पेज 102, वसीलतुन्नजात-मीरज़ा मुहम्मद हुसैन नाईनी पेज 56, उरवतुल वुसक़ा-सैयद काज़िम तबातबाई भाग 1 पेज 28।

फिर आज के ज़माने में अगर उलेमा (मुज्तहदों) से फ़तवे लिए जाएँ तो वह मिली हुई चीज़ का मांगना होगा। मगर ज़माने के हालात से कुछ लोग ऐसे फ़तवों के छपने से ग़लत फ़हमी का शिकार हो जाते हैं । ये मालूम होना चाहिए कि अहलेसुन्नत अपने मज़हब के लेहाज़ से हरिगज़ एहलेबैत (अ०) से दुश्मनी नहीं रख सकते ह० अली इब्ने अबितालिब (अ०) की फ़ज़ीलत श्रेष्ठता और महानता इनके मज़हब का एक हिस्सा है । शाह अब्दुल अज़ीज़ की किताब तोहफ़-ए-इसना अशरिया जो अहले सुन्नत में अब भी पूरी तरह मानी जाती है बल्कि मनाज़रा (धर्म विवादों) का केन्द्र है, इसमें तो ये साबित करने की कोशिश की गयी है कि अली(अ०) के असली शीया हम हैं और जितनी हदीसें ह० अली इब्ने अबितालिब (अ०) के शीयों की तारीफ़ में आयी हैं वे हम पर खपती हैं।

ऐसे में कभी ये समझना कि सुन्नी लोग नसिबी शब्द के तहत में आते होंगे, बिल्कुल ग़लत है । बेशक हां ये ज़रूर हो सकता है कि कोई सुन्नी अपने को सुन्नी कहता हो मगर अपने मज़हब के ख़िलाफ़ हज़रत अली(अ०) के लिए बुरे शब्द इस्तेमाल करता हो और उनसे दुश्मनी ज़ाहिर करता हो, तो ऐसा आदमी बेशक नासिबी होगा, और उलमा इसे नासिबी होने का फ़तवा दे सकते हैं ।

लेकिन ये बिल्कुल निजी बात है और इसका किसी गुट या सम्प्रदाय (वर्ग) से ताल्लुक़ नहीं हो सकता । जिस तरह अगर कोई शीया अपने आपको शीया कहता हो मगर नऊज़ुबिल्लाह ख़ुदा रसूल (स०) या आइम्मा (अ०) की शान में अपमान करे तो वह काफ़िर है और उसका नाम को शीया धर्म का मानना उसके लिए हरगिज़ फ़ायदे का नहीं है।

अगर आप ऐसे किसी को पहचान लें और आप के लिये साबित हो जाए कि वह इस तरह के शब्दों को अपनी ज़बान पर लाता है या क़लम से इस तरह की बातें लिखता है तो ज़रूर इसको काफ़िर समझिये और

इससे दूरी बरतिए।

याद रखिए कि जब तक इस्लाम के ज़ाहिरी परदे के अन्दर कुछ भी गुन्जाइश निकलती है तब तक मुस्लिम और ग़ैर मुस्लिम बराबर नहीं हो सकते और न ही ग़ैर-मुस्लिम की नजासत का हुक्म हटाया जा सकता है ।

ज़रूरत के हदें

इसमें कोई शक नहीं कि ज़रूरत की वजह से अक्सर हराम चीज़ें भी हलाल हो जाती हैं मगर ज़रूरत के मानी समझने में अक्सर लोगों को धोखा हो जाता है । ज़रूरत के आम मानी जो लोग समझते हैं उस लेहाज़ से बिना ज़रूरत खाना ही नहीं खाया जाएगा चाहे वह मुसलमान शीया इसनाअशरी के हाथ का पका हुआ क्यों न हो । फिर इसके क्या मानी कि ज़रूरत के वक़्त ग़ैर मुस्लिम का खाना जाएज़ है। देखिए ज़रूरत के ये मानी हैं कि जिस वक़्त इन्सान के लिए (बे ज़बह का) मुर्दा (लाश) जानवर हलाल हो जाता है और ज़रूरत के मानी वह वक़्त है कि जब इन्सान की ज़िन्दगी उस हराम चीज़ पर टिकी फिर ये भी याद रखिए कि ज़रूरत की वजह से जो चीज़ जाएज़ होती है, उसका इस्तेमाल बस उतना ही जाएज़ है जितनी ज़रूरत है यानी जान बचाने के लिए बस उतना ही इस्तेमाल जायज़ होगा कि जिससे बस जान बच जाए ।

अक्सर लोग ख़ास तौर से वह जो सरकारी दफ़्तरों में या कालेजों और स्कूलों में नौकरी करते हैं, वह ग़ैर मुस्लिमों से परहेज़ करने में बड़ी कठिनाई महसूस करते हैं, किसी हद तक मैं उनकी कठिनाई को मानता हूँ । अगर सब मुसलमानों का यही तरीक़ा होता कि सब ग़ैर मुसलमानों से परहेज़ करते होते तो ये इस्लाम का एक माना हुआ हुक्म समझा जाता और इसे अपने मज़हबी तासुब या तंग नज़री ना कहा जाता, जिस तरह हिन्दुओं में ये रस्म बराबर बाक़ी रही और कोई भी परेशानी पैदा नहीं हुई । मगर मुश्किल ये है कि हमारे दूसरे मुसलमान भाई इस पर नहीं चलते इसलिए न जानने वाले लोगों को इसकी मज़हबी हैसियत का एहसास नहीं होता फिर भी मैं समझता हूँ कि ये मुश्किलें हमारी कर्मशक्ति की कमज़ोरी की वजह से हैं । अगर हमारे शीया जहां जहां हो वह कड़ाई से इस पर चलते रहें और ये बताते रहें कि हम ये किसी निजी नफ़रत या दुश्मनी की वजह से नहीं करते, बल्कि एक मज़हबी उसूल की वजह से मजबूर हैं तो धीरे-धीरे ये सच्चाई फैल जाएगी और लोगों को मालूम हो जाएगा कि ये शीया फ़िरक़े (सम्प्रदाय) की एक मज़हबी विशेषता है जिससे वह मज़हबी हैसियत से बन्धें हैं।

ये बड़े ही अफ़सोस की बात है कि हिन्दुओं के लिए जेलों में इसका इन्तेज़ाम हो कि उसे हिन्दू ही के हाथ का खाना दिया जाए और ये जेल के क़ानून के ख़िलाफ न हो। सिक्खों के लिये दाढ़ी रखने की इजाज़त जेल में हो और जेल के क़ानून से मगर शीयों के लिए यह बात कि उनको मुसलमान के हाथ का खाना दिया जाए ये जेल के क़ानून के ख़िलाफ़ हो जाता है ।

याद रखिए कि ये सिर्फ़ हमारी भावना और इरादे की कमज़ोरी का नतीजा है। इतना ही नहीं बल्कि ये मामला ग़ौर करने के क़ाबिल है कि सिख तो जेल ख़ानों में दाढ़ी रखने में आज़ाद हों लेकिन मुसलमान इसके लिये आज़ाद ना हों, जबकि सिख सिर्फ़ कुछ लाख हैं और मुसलमान इस वक़्त नौ करोड़ से भी ज़्यादा हैं और दाढ़ी का रखना मुसलमानों के यहां एक मज़हबी फ़र्ज़ की हैसियत रखता है मगर ये इस बात का नतीजा है कि सिख अपनी मज़हबी शिक्षा पर चलते हैं इसलिए दुनिया उनके मज़हबी उसूल की इज़्ज़त करती है, और तमाम मुसलमान एक जुट अपनी मज़हबी तालीम (इस्लामी शिक्षा) से बन्धे टिके नहीं रहते इसलिए दूसरे इनके मज़हबी उसूलों को कोई अहमियत नहीं समझते ।

कितने ताज्जुब की बात है कि वह लोग जो ज़रा-ज़रा सी बात पर दीन में दख़ल देने का ढ़िंढोरा पीटते हैं वह इन बातों को देखते हैं और इन पर कभी ज़बान तक नहीं हिलाते। यही सूरत मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिमों के मामले की है। अगर शीया कड़ाई से मज़हबी बातों को बरतते रहें तो दूसरों को भी इसका लेहाज़ करने पर मजबूर कर सकते हैं । और अगर वह खुद ही इसकी कुछ अहमियत न समझते हों या सिरे से इसके पाबन्द ही न हों, या ऐसी कमज़ोर रस्मी पाबन्दी रखते हों कि ज़रा सी सख़्ती में घबरा जाएँ और उलेमा

से ग़ैर-मुस्लिम की चीज़ों के इस्तेमाल के जाएज़ होने का फ़तवा मंगवाने लगें तो दूसरों को भी कोई ज़रूरत नहीं है कि वह उनके इस मज़हबी हुक्म का कोई लेहाज़ करें।

ये कौन सी बात है कि दूसरी बातों पर क़ूनन से छूट जाएज़ समझा जाए और इस मज़हबी उसूल की बुनियाद रखने के लिए जेल के अन्दर क़ानून से छूट जाएज़ न हो ।

मगर इसका कोई असर तभी हो सकता है जब सब मिल कर बड़े स्केल पर यह करें वरना अगर सबने ज़रूरत की आड़ लेकर उलेमा से फ़तवे मंगवा लिए और जो भी खाने को मिला उसे मन से ना चाहते हुए ही सही आराम से से इस्तेमाल करते रहें तो अगर कुछ 'सरफिरे' अपनी बात पर टिके भी रहें तो इसका कोई नतीजा तो निकल नहीं सकता । मगर याद रखए कि अपने फ़र्ज़ को कर्तव्य समझना इन्सान का असल जौहर (सत्य) है और मज़हब के हुक्मों की अहमियत शरीर पूजा और सहलतों के ऊपर है। इलाज के सिलसिले में ख़ास तौर से सुस्ती से काम लिया जाता है, डाक्टर साहब से नुस्ख़ा लिखवाया और हिन्दू दुकान से नुस्ख़ा बंधवाया । समझा जाता है कि इस दवा का इस्तेमाल जाएज़ है, क्योंकि ज़रूरत के तहत है बाद में मुंह पाक कर लिया जाएगा । मगर ये हरगिज़ सही नहीं है । लखनऊ में तो अब अंग्रेज़ी दवाओं की भी मुसलमान बल्कि शीया दुकानें मौजूद हैं इसलिए अगर डा० साहब का एलाज भी हो तब भी कोई ज़रूरत नहीं कि हिन्दू दवाख़ाने से दवा ली जाए लेकिन अगर अंगेज़ी दवा की दुकान किसी मुसलमान की नहीं है तो आपको ये समझने की ज़रूरत है कि आप की ज़िन्दगी सिर्फ़ इसी डाक्टरी इलाज पर निर्भर है या कोई और रास्ता है यानी अगर आप हकीम के इलाज से भी ठीक हो सकते हैं और आपकी जान हकीम के इलाज से बच सकती है तो फिर आपके लिए डाक्टरी इलाज ही नाजाएज़ होगा ।

मतलब ये है कि अगर आप सचमुच शरीयत के पाबन्द हैं तो आपको इस फ़र्ज़ की अहमियत समझना चाहिए और इसमें ढ़ील से काम नहीं लेना चाहिए ।

वक़्ती (लगने वाली) नजासत

इससे पहले जिन नजासतों का नाम लिया गया, जैसे पेशाब, पाख़ाना, खून, कुत्ता, सूवर, शराब, काफ़िर वग़ैरह ये सब असली और टिकाऊँ नजासतें हैं। मतलब ये है कि इनकी नजासत निजी है यानी ये अपने में नजिस हैं। ये नहीं हो सकता कि ये चीज़ें अपनी हालत पर टिके रहते हुए पाक हो जॉए । इनके अलावा दुनिया की सारी चीज़ें अपने में तो पाक हैं लेकिन अगर वह ऊपर बयान की गई चीज़ों में से किसी एक से भी भीगी हुई हालत में मिल (सट जाए या छू जाए) तो उनमें वक़्ती तौर पर नजासत आ जाएगी, इसको " मु-तनज्जिस" कहते हैं । यानी वह चीज़ जो खुद तो नजिस नहीं है मगर किसी चीज़ से मिल कर नजिस हुई है। मज़हब के क़ानून में कुछ चीज़ें ऐसी भी हैं जो किसी चीज़ के असर से नजिस ही नहीं होती और वह इन्सान के जिस्म के अन्दर वाले अंग हैं जैसे मुँह के अन्दर पेट के अन्दर, दिमाग़ के अन्दरूनी हिस्से वग़ैरह । इनके बारे में मशहूर तो ये है कि ये अन्दरूनी के हिस्से नजासत के दूर होने पर आप ही आप पाक हो जाते हैं, इसलिए अक्सर उलेमा ने नजासत के दूर होने को मुतहहरात (1) बताया है जैसे अगर दांत से खून निकले तो जब तक वह खून रहा है, तब तक मुंह के अन्दर का हिस्सा नजिस है, लेकिन जैसे ही खून हटा वैसे ही ये अन्दर का हिस्सा पाक हो गया। इसके बाद ज़रूरत नहीं कि अन्दर से भी मुंह या हलक़ को पाक किया जाए। इसी तरह आंख और कान के अन्दर के हिस्से और दूसरे अन्दुरूनी हिस्से । लेकिन जहां तक इस मसले पर ग़ौर किया जाता है तो पता चलता है कि असली नजासत वही खून वग़ैरह की नजासत है जो उसकी अपनी नजासत है, इसलिये जब तक वह बाक़ी है तबतक नजासत का हुक्म मौजूद है और जैसे ही नजासत दूर हुई वैसे ही नजिस होने का हुक्म ख़त्म हो गया । इसलिये ये कहना चाहिए कि जिस्म के अन्दर के हिस्से नजिस ही नहीं होते, न यह कि नजिस तो हो जाते हैं मगर नजासत के दूर होते ही पाक हो जाते हैं

बिल्कुल यही सूरत जानवरों के जिस्म की है हो सकता है कि इनके जिस्म पर कोई नजासत लग जाए तो जब तक वह नजासत खुद मौजूद है तब तक उसका हुक्म मौजूद रहेगा, लेकिन जैसे ही वह नजासत दूर हुई

वैसे ही उसका हुक्म भी हट जाएगा। मिसाल के लिए आपके सामने किसी चिड़िया की चोच या पन्जे में कोई नजासत लग जाए तो जब तक उसकी चोच या पन्जे में नजासत लगी है तब तक वह चोंच या पन्जे नजिस हैं और जैसे ही नजासत हटा दी गई वैसे ही वह पाक हो गए । इसे भी मेरे नज़दीक ये नहीं कहना चाहिए कि वह नजिस थे पाक हो जाते हैं बल्कि ये कहना चाहिए कि वह नजिस होते ही नहीं ।

ग़ौर कीजिए तो ऊपर ब्यान किया गया शरीयत का हुक्म बिल्कुल इन्सान की प्रकृति से मेल खास है । जैसा कि पीछे बताया गया है कि पेशाब, पाख़ाना वग़ैरह की नजासत ज़्यादातर ज़ाती गन्दगी और तबियत में एक तरह की घिन के लेहाज़ से है और ये एक खुली हुई सच्चाई है कि इन सब चीज़ों (पेशाब, पाख़ाना, वग़ैरह) से पूरी तरह तबियत में घिन तभी पैदा होती है जब यह बाहरी हिस्सों में पाई जाती हों । जब तक ये अन्दर छिपी होती हैं तब तक इन्सान इसके नजिस होने के बारे में सोचता भी नहीं तभी तो उस हालत में जब इन्सान को इसका एहसास हो यानी पेशाब या पाख़ाना लगा हो तब भी वह हर पाक से पाक जगह पर चला जाता है । अब न उसे खुद ख़्याल होता है और न ही कोई दूसरा ये सोचता है कि वह किसी नजासत को उस पाक जगह पर ले गया है । हलांकि अगर इन्हीं में से कोइ चीज़ ज़रा सी भी उसके जिस्म के किसी बाहरी हिस्से में लगी होती तो वह खुद उस जगह पर न जाता और न ही कोई दूसरा उसका वहां जाना पसन्द करता है ।

इससे पता चलता है कि बाहर और अन्दर के लेहाज़ से इन्सान के जिस्म की दो दुनियाएँ अलग अलग हैं और इस अन्दर वाली दुनिया ही को इन्सान अपने से अलग समझता है ।

मिसाल के लिए ये भी देखिए कि इन्सान के मुँह की लार से तबियत में उतनी घिन नहीं पैदा होती है कि शरीयत की ओर से उसे नजिस ठहरा दिया जाता फिर भी किसी हद तक इसमें ये बात ज़रूर है इसलिए ख़बासत (मैल) के तहत इसका इस्तेमाल यक़ीनन हराम है मगर ये उसी वक़्त है कि जब मुँह से बाहर आ जाए, उस हालत में ये ' थूक ' कहलाता है और उस वक़्त उसकी गिरावट का पूछना ही क्या। लेकिन यही जब मुँह के अन्दर हो तो उसे लार कहा जाता है और उस हालत में क़ुर्आन के पन्नों को पलटते वक़्त ये क़ुर्आन के पन्नों तक भी पहुँच जाए तो लगाव वालों को कोई एतराज़ नहीं।

लाल, सफ़ेद, तरोताज़ा और खिले हुए चेहरे के रंग से खून का रंग फूटता नज़र आता है और गुस्से की हालत में तमतमाता हुआ चेहरा खून के बहाव का साफ़-साफ़ पता देता है मगर जब तक बहुत पतली ही खाल का पर्दा क्यों न मौजूद है तब तक इन्सान का मन इसके नजिस होने के बारे में सोच भी नहीं सकता, लेकिन यही अगर छलक जाए और बाहर निकल आए तो चेहरे को किसी चीज़ से पोंछना ज़रूरी है ।

मेडिकल साइंस के लेहाज़ से देखिए तब भी ये पता चलता है कि ये गन्दी चीज़ें जब बाहर रहें तो आस-पास की हवा में तरह-तरह की बीमारियों के जरासीम पैदा होते हैं और लोगों की सेहत के लिए नुक़सानदेह होते हैं। दूसरी चीज़ों की क्या बात सिर्फ़ थूक ही के लिए आप स्टेशनों पर टेनों मे, इमारतों में ये लिखा हुआ देखेंगे कि ''थूकना मना है'' मगर हर इन्सान जो इन जगहों पर आता-जाता, रहता-सहता है, उसके मुँह में हर वक्त ये (थूक) रहती है, उसमें कुछ भी नहीं है।

नेचुरली यह बिल्कुल सामने की बात है कि ये चीज़ें जब बाहर हों तो इनमें बदबू पैदा होकर हवा में दूर तक फैल जाएगी और इसका बुरा असर महसूस होगा और बुरा लगेगा, लेकिन अन्दर होने की हालत में ऐसा नहीं होता । मालूम होता है कि शरीयत की तरफ़ से ज़ाहिर बाहर और अन्दर का जो फ़र्क़ रखा गया है वह बिल्कुल नेचर के क़ानून से मेल खाता है ।

जानवरों के जिस्म के अंगों की पाकी से इन्सानों के लिए आसानी पैदा हो गई, क्योंकि जानवरों पर खुद तो कोई ज़िम्मेदारी लागू नहीं होती और न उनपर कोई पाबन्दी डाली जा सकती है। उनके हाथ-पांव, मुँह, चोंच, पन्जों के नजिस होने का अगर मतलब हो सकता है तो सिर्फ़ ये कि इन्सान उनसे परहेज़ करे। अगर पानी का घड़ा रखा है और इसमें कौवा चोच डाल दे तो ये घड़ा नजिस समझा जाता, कपड़ा धोकर तार पर फैलाया,

चिड़िया आकर बैठ गई तो कपड़ा नजिस हो जाता क्योंकि कौवे की चोंच और चिड़िया के पन्जे आपके क़ाबू में नहीं हैं जो आप उनको नजिस जगह जाने से रोकते फिरें । ऐसे में उन पर तो कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता मगर आपकी ज़िन्दगी अजीरन हो जाती । लेकिन शरीयत का ये हुक्म होने यानी उनकी नजासत उसी वक़्त तक है जबकि उनके जिस्म पर नजासत लगी है । जैसे ही नजासत दूर हुई वह पाक हैं, इससे बड़ी आसानी पैदा हो गयी । अब अगर देख लिया कि उसकी चोच, पन्जे हाथ या मुँह में कोई नजासत लगी हुई है तब तो बेशक आपको उसे नजिस समझना पड़ेगा । ये उस जानवर के जिस्म की नजासत नहीं होगी बल्कि उस असली नजासत का नतीजा होगा जो उसमें लगी हुई है लेकिन अगर कोई नजासत लगी हुई नजर नहीं आती तो कोई वजह नहीं कि आप उसको नजिस समझें । (यानी अब आप उसे नजिस न समझें)। ....जारी ✦✦✦

नाते रसूल

नदल हिन्दी

दयारे करम है दयारे मोहम्मद
है रश्के जिनां खुद जवारे मोहम्मद
जिसे कहते हैं रौनक़े बाग़े आलम
समझ लो यही है बहारे मोहम्मद
खुदा की खुदाई है मोहताज इनकी
ये है कम से कम इख़्तियारे मोहम्मद
कहा रजअते शम्सो शक़्क़े क़मर नें
जहां में है बस इक़्तेदारे मोहम्मद
बलन्दी-ए-किरदार की हद नहीं है
है काफ़िर को भी ऐतेबारे मोहम्मद
मलाएक निगाहें बिछाए हुए हैं
है मेराज में इन्तेज़ारे मोहम्मद
उठी गर्दे पा और पंहुची फ़लक पर
बलन्द आस्तां है ग़ुबारे मोहम्मद
सवारी बना है रसूलों का आक़ा
हैं दोनों नवासे सवारे मोहम्मद
मुसीबत में जो काम आया नबी के
उसी को कहुंगी मैं यारे मोहम्मद
है सीने में जिसके उलूमे पयम्बर
उसी को कहो राज़दारे मोहम्मद
जिसे देखकर उठ खड़े हों पयम्बर
वही है यक़ीनन वक़ारे मोहम्मद
मेहारे ज़माना है दस्ते नबी में
है हाथों में किसके मेहारे मोहम्मद
वो ताजे वेलायत नबी ने पिन्हाया
वो मौला बना ताजदारे मोहम्मद
पयम्बर लिए हैं जिन्हें ज़ेरे चादर
वही हैं वही इफ़्तेख़ारे मोहम्मद
वसीये नबी जो मिनल्लाह होगा
करेगा वही शख़्स कारे मोहम्मद
नबी अपने हैं ज़िम्मादारे खुदाई
खुदा अपना है ज़िम्मादारे मोहम्मद
अलीये वली और हसनैने आली
यही चन्द तन हैं क़रारे मोहम्मद
जिसे कहते हैं फ़ातेमा बिन्ते अहमद
वो है नाज़िशो इफ़्तेख़ारे मोहम्मद
जिसे देखकर गुल को आये पसीना
वो है गेसुए मिश्क़ बारे मोहम्मद
पसे गर्दे हिज़्बे पयम्बर नदा चल
जिनां जा रहा है ग़ोबारे मोहम्मद

✦✦✦

मदहे इमाम जाफरे सादिक़ अ. स.

वसीये मुरसले आज़म हैं हज़रत जाफरे सादिक़
तभी तो करते हैं कारे रिसालत जाफ़रे सादिक़
है वाजिब आपकी लारैब मिदहत जाफ़रे सादिक़
मगन है चूंकि दरियाए तबीअत जाफरे सादिक़
इन्हें हाजत नहीं दुनिया की, बस अल्लाह काफ़ी है
मगर है सारे आलम की ज़रूरत जाफ़रे सादिक़
न क्यों तालीम दें इल्मे पयम्बर की ज़माने को
हैं बेशक वारिसे इल्मे नुबूवत जाफ़रे सादिक़
ज़माना इस क़दर रौशन तुम्हारे इल्म ही से है
तुम्हीं हो फ़ख़्रे अरबाबे बसीरत जाफरे सादिक़

✦✦✦